राजनीति शास्त्र की पुस्तकों पर टिप्पणी

डॉ. पूनम बत्रा

यह माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर, राजस्थान की राजनीति शास्त्र के कक्षा 11 की पुस्तकों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी है। इस टिप्पणी में दर्शाया गया है कि इन पुस्तकों में भी अतीतोन्मुखता हावी है और बिना प्रमाणिक आधारों के यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि अतीत में हमारे यहां पर व्यवस्थित राजनैतिक चिंतन रहा है। इन पुस्तकों के लेखकों में विषय क्षेत्र की भी अस्पष्टता दिखती है।

यह टिप्पणी भी राजस्थान की पाठ्यपुस्ताकों के राज्य स्तरीय सम्मेलन के लिए लिखी गई है।

इस पाठ्यपुस्तक में 15 अध्याय सात इकाइयों में बंटे हुए हैं। यह पुस्तक राजनीति शास्त्र की नहीं बल्कि नागरिक शास्त्र की अधिक प्रतीत होती है। विषय से परिचय कराने वाला अध्याय ही ''राजनीति शास्त्र'' अध्ययन के परिप्रेक्ष्य और उसके एक अवधारणात्मक क्षेत्र को लेकर भ्रमित करता है।

यह बिना किसी ठोस प्रमाण के इस बात पर जोर देता है कि राजनीति शास्त्र के उद्‌भव को सिर्फ यूनानी दार्शनिकों के विचारों से ही मानना चाहिए बल्कि प्राचीन भारतीयशास्त्रों जैसे वेद, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों में भी देखा जा सकता है। इतना ही नहीं यह इस बात पर भी जोर देता है कि राजनीतिक चिन्तन के प्रमाण प्राचीन भारतीय महाकाव्यों और नीति वचनों में भी मिलते हैं। (अध्याय 1, पृ. 1 : प्राचीन भारतीय और पश्चिमी आचार्यों ने राज्य के प्रयोजन, स्वरूप तथा राज्य और व्यक्ति के मध्य सम्बन्धों के विषय में व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। कुछ वर्षों पूर्व तक प्लेटो और अरस्तू जैसे यूनानी दार्शनिकों को राजनीति शास्त्र का जनक माना जाता रहा है, किंतु अब भारतीय और पश्चिमी विद्वान राजनीति शास्त्र के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय आचार्यों के योगदान को भी स्वीकार करने लगे हैं।) इस तरह के दावे के स्रोतों के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं होती। यह किन्हीं साक्ष्यों पर आधारित व्याख्या नहीं बल्कि एक मत अधिक प्रतीत होता है।

पाठ आगे भी इन्हीं प्राचीन ग्रंथों, जैसे 'दंडनीति', 'राजधर्मशास्त्र', 'नीति शास्त्र', 'अर्थ शास्त्र' के संदर्भ में राजनीति शास्त्र की व्याख्या करना जारी रखता है। इस तरह यह पाठ राजनीति शास्त्र के अध्ययन में 'मूल्य, आदर्श और नैतिकता' के महत्त्व को स्थापित करता चलता है। (अध्याय 1, पृ. 2 : राजनीति का परम्परावादी दृष्टकोण आदर्शवादी, दार्शनिक एवं कल्पनावादी है। इसमें मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिकता को महत्त्व दिया गया है।)

राजनीति शास्त्र की विभिन्न आधुनिक अवधारणाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए मूलतः अंग्रेजी में लिखे गए विचारों का हिन्दी अनुवाद करने में पाठ में भारी भूलें हुई हैं। उदाहरण के लिए ''political science as the study of power'' का अनुवाद ''शक्ति का अध्ययन'' किया गया है, जिसे ''सत्ता का अध्ययन'' किया जाना चाहिए था।

लेखक परिचय :

दिल्ली विश्वविद्यालय के केन्द्रीय शिक्षा संस्थान के मौलाना आजाद सेन्टर फॉर एलीमेन्ट्री एण्ड सोशल एज्युकेशन में अध्यापनरत, बी.एल.एड. जैसे महत्वपूर्ण शिक्षा कार्यक्रमों की संकल्पना में योगदान।

सम्पर्क :

मौलाना आजाद सेन्टर फॉर एलीमेन्ट्री एण्ड सोशल एज्युकेशन, सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ एज्युकेशन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

परम्परावादी, धार्मिक और नैतिक मूल्यों को राजनीति शास्त्र के अध्ययन के साथ जोड़ने के प्रयास सभी पाठों में साफ नजर आते हैं। यहां तक कि राजनीति शास्त्र के अन्य विषयों जैसे समाजशास्त्र के साथ सम्बन्ध के बारे में (अध्याय 3, पृ. 25 : मनुष्य का राजनीतिक जीवन तो सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का एक पक्ष मात्र होता है।) या राष्ट्रीयता की परिभाषा देते हुए (अध्याय 5, पृ. 65 : राष्ट्रीयता ऐसी भावना है जो लोगों के समूह को एक प्रजाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, भौगालिक स्थिति के कारण निकटता से जोड़े रखने का कार्य करती है।) ''एक पहचान'' इन पाठों की अंतर्निहित विषय-वस्तु है।

अध्याय 3 में ही सभी सामाजिक विज्ञानों की चर्चा की गई है उनके प्रति न सिर्फ बहुत सीमित समझ नजर आती है बल्कि वह पर्याप्त विकृत भी है। उदाहरण के लिए मनोविज्ञान मन के अध्ययन का विषय है और भूगोल मात्र धरती, इसके आकार, वातावरण और विभिन्न क्षेत्रों के बारे में जानकारी से संबंधित है।

'राज्य' को परिभाषित करने का प्रयास (अध्याय 5, पृ. 54) बहुत ही औसत समझ का परिचय देता है, जिसमें किसी किस्म की स्पष्टता का नितांत अभाव है। इसी अध्याय में भारतीय संदर्भ में 'अच्छे नागरिक' के बारे में बताया गया है ''भारत के संदर्भ में यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण थी। नागरिक मूल्य आधारित संस्कारों के होंगे तो व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य स्वतः ही आदर्श रूप को प्राप्त कर सकेंगे।'' यहां विद्यार्थियों को नागरिकता के विचार को समझाने या उसे समझने के लिए प्रेरित करने का कोई प्रयास तक नहीं किया गया है।

इकाई चार राजनीतिक दर्शन के बारे में है। इस इकाई के तहत अध्याय 6 में 'दैवीय सिद्धांतों' के साथ बात शुरू की गई है। इसे खासतौर से भारतीय संदर्भ में काफी विस्तार के साथ समझाया गया है। राजा की दैवीय शक्ति को समझाने के लिए मनुवाद से उद्धरण दिए गए हैं। इसकी समानता यहूदी परम्परा और समकालीन जापान से बताई गई है ! इसी तरह पितृसत्ता और मातृसत्ता के बारे में भी ठोस प्रमाणों पर आधारित अवधारणाओं को गढ़ने की बजाय काफी दुराग्रहपूर्ण चर्चा की गई है। दोनों ही व्यवस्थाओं को रक्त सम्बन्धों पर जोर देने वाली व्यवस्थाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अगले अध्याय में भी यही क्रम बना रहता है।

अगला अध्याय भूमंडलीकरण और ई-गवर्नेंस के बारे में है, खासतौर से भारतीय संदर्भ में। आतंकवाद, गरीबी और आर्थिक असमानता के बारे में किसी किस्म के वैचारिक विश्लेषण में गए बिना बता दिया गया है।

सरकारों के प्रकार से संबंधित अध्याय (अध्याय 10, पृ. 121), भी इसी परिपाटी पर चलता है - जिसमें पहले सरकारों के विभिन्न प्रकारों के अर्थ और परिभाषाएं दी गई हैं, और फिर बिंदुवार सभी की अच्छाइयां और बुराइयां बता दी गई हैं। तानाशाही की अच्छाइयों को खासतौर से महिमामंडित किया गया है : **उच्च गुणों को प्रोत्साहन :** अधिनायक तंत्र देशवासियों में बलिदान, त्याग, अनुशासन और देशभक्ति के उच्च आदर्शों को प्रोत्साहित करता है। **कम खर्चीली शासन व्यवस्था :** लोकतंत्र के समान इस शासन में चुनाव प्रबंधन तथा शासन प्रबंधन के लिए बहुत अधिक खर्च नहीं होता। प्रस्तुतिकरण का यह तरीका पाठक को शासन व्यवस्था के रूप में अधिनायक तंत्र को बेहतर मानने के लिए प्रोत्साहित करता है। हालांकि यह दोनों पक्षों के बीच संतुलन का भ्रम पैदा करता है।

लोकतंत्र के बारे में भी समझ में अवधारणात्मक दोष हैं, खासतौर से वह खंड जिसमें 'लोकतंत्र के सफल संचालन की आवश्यक शर्तें' बताई गई हैं। समानता और सामाजिक न्याय को लोकतंत्र के उद्देश्य की बजाय लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक शर्त के रूप में बताया गया है।

सरकार के विविध प्रकारों को लोगों के जीवन अनुभवों से जोड़ने का भी कोई प्रयास इस पुस्तक में नहीं किया गया है। ऐसे में यह पुस्तक शिक्षण के तौर-तरीकों के लिहाज से असंप्रेषणीय और अबोधगम्य साबित होती है, जो कि बिना किसी अवधारणात्मक स्पष्टता के सूचनाएं मात्र प्रदान करती है और वे भी अपर्याप्त और विकृत होती हैं। ऐसे में यह पुस्तक विद्यार्थियों को परीक्षा पास करने के लिए इन बिखरे हुए सूचनात्मक टुकड़ों को रटने के अलावा और कोई विकल्प उपलब्ध नहीं कराती।

यह पुस्तक मात्र सूचनाओं का पुलिंदा मात्र है जिसका न कोई सैद्धांतिक फ्रेमवर्क है और न ही यह अपनी किन्हीं साक्ष्यों पर आधारित है।

कक्षा 11, राजनीति शास्त्र, पुस्तक - 2

यह पुस्तक राजनीति शास्त्र की कम और इतिहास की किताब ज्यादा लगती है। इसमें पांच इकाइयों में बंटे हुए 14 पाठ हैं। पुस्तक की शुरुआत स्वाधीनता आंदोलन से होती है, जिसमें भारत छोड़ो आंदोलन, और असहयोग आंदोलन सहित विभिन्न आंदोलनों की चर्चा करने के बाद स्वाधीनता सेनानियों की जीवनियां भी प्रस्तुत की गई हैं।

भारत के संविधान के अंतिम रूप लेने से पहले उसके निर्माण के कालखंड को दो भागों में बंटा हुआ बताया गया है : 1909 से 1919 और 1935 से 1947। अंबेडकर के बारे में अलग से एक इकाई में बताया गया है, जहां विभिन्न महापुरुषों की जीवनियां दी

गई हैं, लेकिन संविधान के निर्माण के बारे में उनके योगदान का जिक्र नहीं किया गया है। क्रांतिकारियों को उदारवादियों के समानांतर रखा गया है और उदारवादियों को क्रांतिकारियों की विफलता के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है।

अध्याय 4 में विभाजन के दौरान इलाकों के बंटवारे के बारे में बताते हुए भी भारी भूलें छोड़ दी गई हैं (पृ. 63)।

1857 की क्रांति को प्रथम स्वाधीनता संग्राम बताते हुए उसके पीछे कुछ सामाजिक कारणों का भी जिक्र किया गया है, जिनमें भारतीय समाज में अंग्रेजों के कुछ सुधारवादी कदमों जैसे सती प्रथा को समाप्त करने आदि, ईसाईयत को जबरदस्ती लोगों पर थोपने, अंग्रेजी दवाइयों के प्रयोग और अंग्रेजी शिक्षण व्यवस्था के प्रति असंतोष शामिल हैं।

अंग्रेजों पर लोगों का जबरन धर्मांतरण करवा कर उन्हें ईसाई बनाने का आरोप लगाया गया है (अध्याय 6, पृ. 85)। कुछ समुदायों को नीचा दिखाने की यह प्रवृत्ति पृ. 93 पर भी जारी रहती है, जहां कुछ समुदायों पर अंग्रेजों का साथ देने का आरोप लगाया गया है (अध्याय 6, पृ. 93 : **क्रांति की असफलता के कारण** : सिखों व गोरखों ने अंग्रेजों का साथ दिया)।

ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक जीवनियों का चयन धार्मिक आंदोलन को केंद्र में रख कर और हिंदू आदर्शों और मूल्यों को स्थापित करने के इरादे से किया गया है। स्वामी दयानंद की जीवनी में इस भ्रामक जानकारी को स्थापित किया गया है कि प्राचीन भारत में समाज का वर्गीकरण काम पर आधारित होता था जबकि जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित होती है।

दोनों पुस्तकें न सिर्फ 'अप्रामाणिक सूचनाओं' से लदी हुई हैं और उनमें किसी किस्म की सैद्धांतिक समझ का नितांत अभाव है बल्कि वे बहुतलतावाद का भी मजाक बनाती नजर आती हैं। इतना ही नहीं यह अवधारणा के रूप में बहुतलतावाद को न सिर्फ कमतर बताती हैं बल्कि कहीं दबे-छिपे तो कहीं खुलेआम खास तरह के आग्रहों को भी आरोपित करती हैं।

अनुवाद : देवयानी

कविता

हवाएं पढ़ने लगती हैं

अधूरी, खुली छोड़कर किताबों को,

हम चल देते हैं अपने घरों में,

और हवाओं को दिख जाती हैं खुली किताबें

फिर होती है आवाज पन्नों के पलटने की,

हवाएं पढ़ने लगती हैं किताबें

पन्ने दर पन्ने उत्सुकता में या जल्दबाजी में

पर हमारे आने से पहले पढ़ना चाहती है सबकुछ

वो सबकुछ जो हम छोड़ देते हैं बीच में

हवाएं पढ़ने लगती है

किताबों के वो हिस्से

जो कोरे पन्नों से ढके रहते हैं

हवाएं पढ़ने लगती हैं

भूले गये उन पाठों को

जिन्हें छोड़कर बढ़ जाते हैं

हम अगले पन्नों पर

हवाएं पहुंचने देती है

हर पन्ने पर धूप और गर्मी

- दिलिप

30, एन.ई.बी. सुभाष नगर

अलवर, राजस्थान।